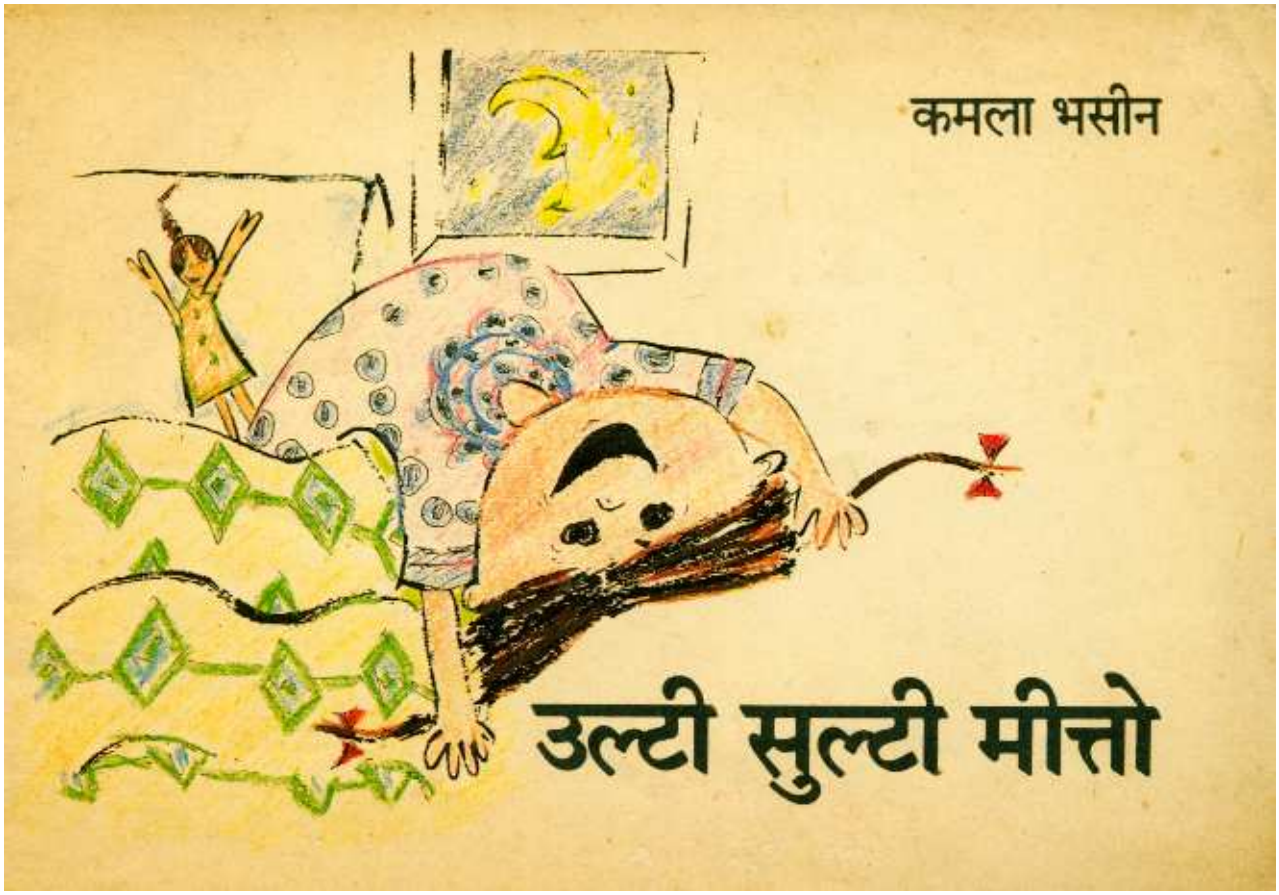
कमला भसीन
उल्टी सुल्टी मीत्तो

उल्टी सुल्टी मीत्तो

लेखन:कमला भसीन
चित्र : सिमरन गिल

काली फॉर विमेन
एन - 84, पंचशील पार्क
नई दिल्ली 110 017

प्रथम संस्करण, 1987
द्वितीय संस्करण, 1988

ISBN 81 85107 18 1

पश्चिमी जर्मनी में की गई एक रिसर्च के हवाले से पता चला कि किन्डरगार्टनों में खेल-खिलाने और सिखाने वाली अध्यापिकायें दिन भर में बच्चों से जो बातचीत करती हैं उस में सत्तर फ़ीसद झिड़किआँ या धमकिआँ होती हैं। मसलन "अरे ये मत करो" "ये कौन गड़बड़ कर रहा है?" "सुना नहीं" "चुप हो जाओ, एकदम चुप" वग़ैरह। हमारे देश के किन्डरगार्टनों और स्कूलों में हालत इस से बदतर ही होगी बेहतर नहीं।

मेरे ख़याल से हमारे घरों में भी बच्चों के साथ ऐसा ही सुलूक होता है। अगर हम माँ बाप घर पर एक टेप रिकॉर्डर लगा छोड़ें और रात को उसे सुने तो हमें भी ज़्यादा यही सुनने को मिलेगा "इसे मत छुओ यह टूट जायेगा", "उसे रख दो वह ख़राब हो जायेगा", "अरे बाबा मेरा सर मत खाओ", "देखो बाज़ आ जाओ नहीं तो मार पड़ेगी"। उस दिन अगर हमारी बर्दाश्त कुछ कम हुई तो बच्चों को थप्पड़ भी पड़ सकते हैं।

ये ज़ुल्म हम माँ बाप और अध्यापक उन नन्हें बच्चों पर करते हैं जो हर नई चीज़ सीखने के उत्सुक हैं, जो चीज़ों को छू कर, टटोलकर, सूँघ कर, चख कर, खोल कर, तोड़कर समझना चाहते हैं। हम अपनी डाँट और धमकिओं से बच्चों की सीखने और परखने की ख़्वाहिश को दबाते रहते हैं। बच्चों के शिक्षक होने की जगह हम उनके चौकीदार बन कर रह जाते हैं। बच्चे हर चीज़ से खेल खेल में इल्म लेना चाहते हैं और हम इल्म को किताबी और स्कूली चीज़ बना कर हउआ बना देते हैं।

इस सब के पीछे शायद माँ बाप की यह ख़्वाहिश होती है कि उनके बच्चे 'नन्हें फ़रिश्ते' हों। वे सिर्फ़ अच्छी बातें सीखें और हमेशा ठीक काम करें। और अकसर ठीक काम का मतलब होता है वह काम जिसे हम ठीक समझते हैं। मिसाल के तौर पर हम चाहते हैं कि बच्चे हमारे कहने से उठें और हमारे कहने से बैठें, हमारे कहने से पालक खायें (चाहे हम पालक खाते हों या नहीं), वो अँगूठा हर्गिज़ मुँह में न डालें (चाहे हम दिन भर अपने मुँह में सिगरेट डाले रहें), वो खेलें तो लेकिन शोर न करें और कपड़े गन्दे न करें। हम कहें "चलो बेटा, अंकल-आन्टी को गाना सुना दो" तो वो फ़ौरन गाने लगें या जब वो अपनी धुन में मगन गा रहे हों, तो हम कहें "क्यों सर खा रहे हो" और वो झट चुप हो जायें।

हम बुज़ुर्ग कितनी आसानी से भूल जाते हैं कि बच्चों का भी अपना व्यक्तित्व होता है, उनकी अपनी मर्ज़ी, पसन्द, नापसन्द होती है, उनके भी अपने मूड होते हैं। उनके ख़ुद के व्यक्तित्व को उभारने की जगह उन पर हम अपना व्यक्तित्व थोपते रहते हैं। हम यह भी भूल जाते हैं कि बचपन ही एक ऐसा वक़्त होता है जब इन्सान 'बचपना' कर सकता है, 'बच्चों की सी हरकतें' कर सकता है, 'नादानी' कर सकता है। हमें बच्चों का सिर्फ़ एक रूप पसन्द है – आज्ञाकारी रूप (बच्चे शैतानी कर सकते हैं लेकिन सिर्फ़ तब जब हमारा मूड ठीक हो)। लेकिन होते तो हरेक बच्चे के कई रूप हैं – मुस्कुराना - रोता, ख़ुशमिजाज़ - चिड़चिड़ा, साफ़ - गन्दा, कहना मानने वाला - ज़िद्दी।

कुछ अर्सा पहले मैंने अंग्रेज़ी में बच्चों की एक किताब देखी थी जिसमें एक लड़की के कई रूप दिखाये थे। छोटी सी किताब थी। उसकी सादगी मुझे बहुत पसन्द आई। अब उस किताब व उसकी लिखने वाली का नाम तक याद नहीं पर इस कविता को लिखने का ख़्याल उसी किताब को देख कर आया था। मित्र सफ़दर हाशमी ने इस कविता को सुधारने में मदद

की।

इस कविता की मीत्तो के भी कई रूप और रंग हैं। मैं जज बन कर यह नहीं कह रही कि उसका फ़लाँ रूप अच्छा है, फ़लाँ बुरा। मैंने उसे हर रूप में क़बूल किया है। मुझे वह हर रूप में पसन्द है। सच पूछो तो मुझे मीत्तो का 'शरारती' रूप ज़्यादा भाता है क्योंकि उस की शैतानी और चुलबुलापन मेरे अन्दर छिपे हुये बचपन को जगाता है। कुछ देर के लिये बुज़ुर्गिअत और समझदारी का बोझ जो मैं ढोती रहती हूँ, हल्का हो जाता है। मीत्तो के बचपन के साथ जुड़ कर मैं अपने अन्दर एक ताज़गी, एक नई उमँग सी महसूस करने लगती हूँ। मुझे लगता है कि हम बड़े लोग जो बच्चों पर हमेशा अपनी 'समझदारी' थोपते हैं, अगर कभी-कभी उन से थोड़ा बचपन, थोड़ी मासूमिअत ले लें तो हमारे घरों मे ज़्यादा रौनक हो।

मैने जान बूझ कर इस कविता में एक लड़की की बात की है लड़के की नहीं। इसकी एक वजह तो यह है कि ज़्यादातर बच्चों की किताबें लड़कों के बारे में होती हैं। इसलिये यह ज़रूरी है कि अब हम लड़किओं के बारे में किताबें लिख कर उनकी भूमिका को निखारें। इसकी दूसरी वजह है कि हमारा समाज लड़किओं को लड़कों से जल्दी बुज़ुर्ग बना देता है। लड़किओं का बचपन और भी छोटा होता है। मनमानी करने का हक़ उन्हें और भी कम होता है। 'राजा बेटा' को जो आज़ादी और छूट होती है वो बेटी को नहीं मिलती। बचपन से ही लड़किओं को समझाना शुरू कर दिया जाता है कि औरत होने का मतलब है, अपने मन, अपनी ख़्वाहिशों, अपनी ख़ुदी को नकारना और मार डालना। बचपन में ही बच्चिओं पर ज़िम्मेदारियों के बोझ लाद दिये जाते हैं। अपने से छोटे

भाई-बहनों की निगरानी रखना, घर के कामों में माँ का हाथ बँटाना, बाहर से चारा, पानी, लकड़ी लाना, यह सब काम लड़कियों को छोटी सी उम्र से ही करने पड़ते हैं। नादानी, शैतानी, मौज-मस्ती बेटियों के हिस्से में बहुत कम आती है।

यह मानकर कि नाइन्साफ़ी के इस चलन को बदलना ज़रूरी है मैंने इस कविता में एक लड़की को मनमानी करने का, कभी-कभी ज़िद करने का, ख़ूब मस्ती करने का हक़ दिया है।

यह किताब बच्चों के बचपन और लड़किओं की मनमानी के नाम है।

कमला भसीन

आओ मीत्तो की बात सुनायें।
उसके दो दो रूप दिखायें।।

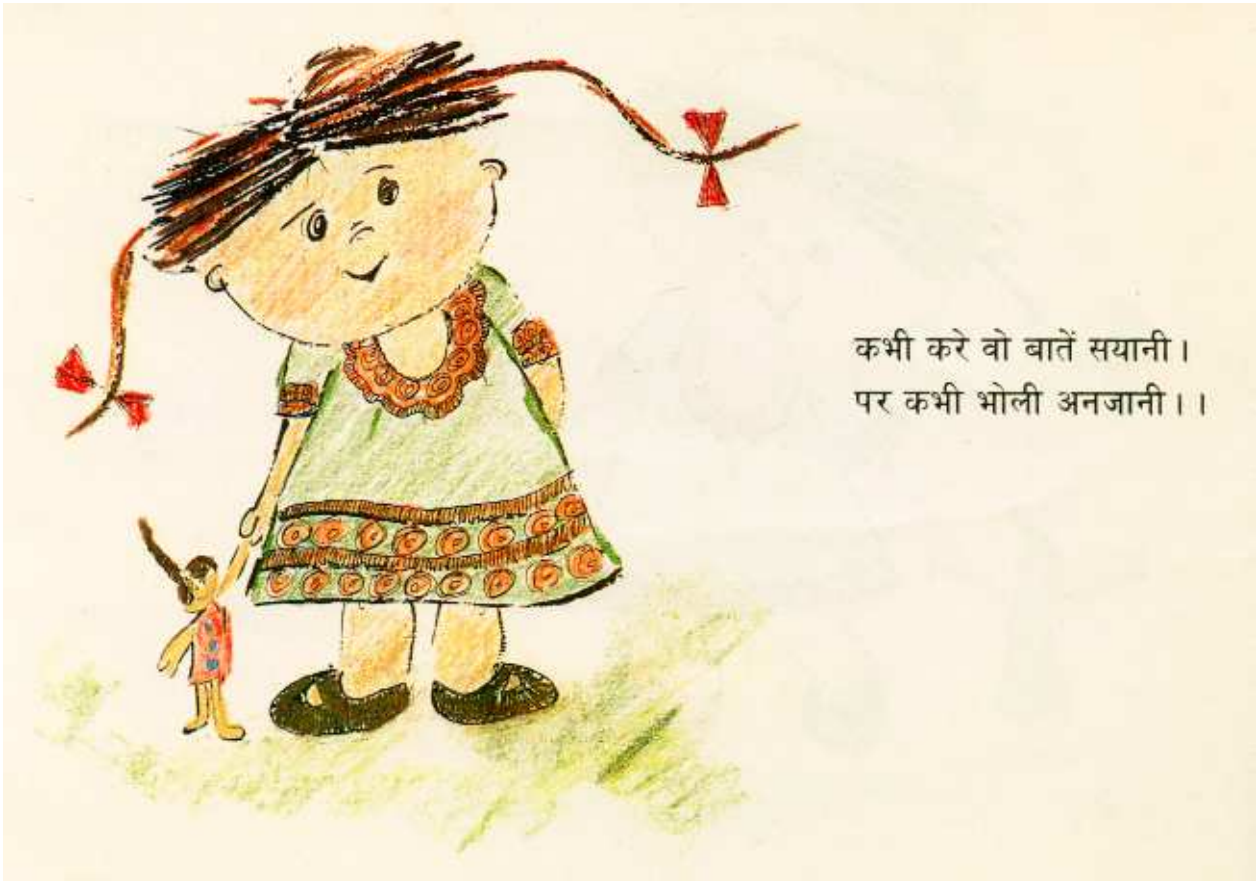

कभी करे वो बातें सयानी।
पर कभी भोली अनजानी।।

पर जब उसे सूझे शैतानी।
करती बस अपनी मनमानी।।

रोज़ तो जागे हँसते हँसते।
जैसे सुन्दर फूल हों खिलते।।

पर कभी-कभी वो बहुत सताये।
आँखें मींचे, मुँह बिचकाये।।
बिस्तर से बाहर न आये।
टीं टीं टीं टीं करती जाये।।

रोज़ वो झट पट नहाती धोती
न वो बिगड़ती न वो रोती।
पर जब शैतानी पर आये
पूरा घर जल-थल हो जाये।
छोटी को साबुन से भर दे
अम्मां को भी गीला कर दे।।

रोज़ जांघिया ठीक ही पहने।

कभी लगे उसे टोपी कहने!

रोज़ तो मोज़े पैर में पहने।

कभी लगे दस्ताने कहने!

यूँ तो पैदल खूब वो भागे।
अम्मा पीछे मीत्तो आगे।।

पर कभी क़दम न एक बढ़ाती।
'गोदी ! गोदी !' रट लगाती।।

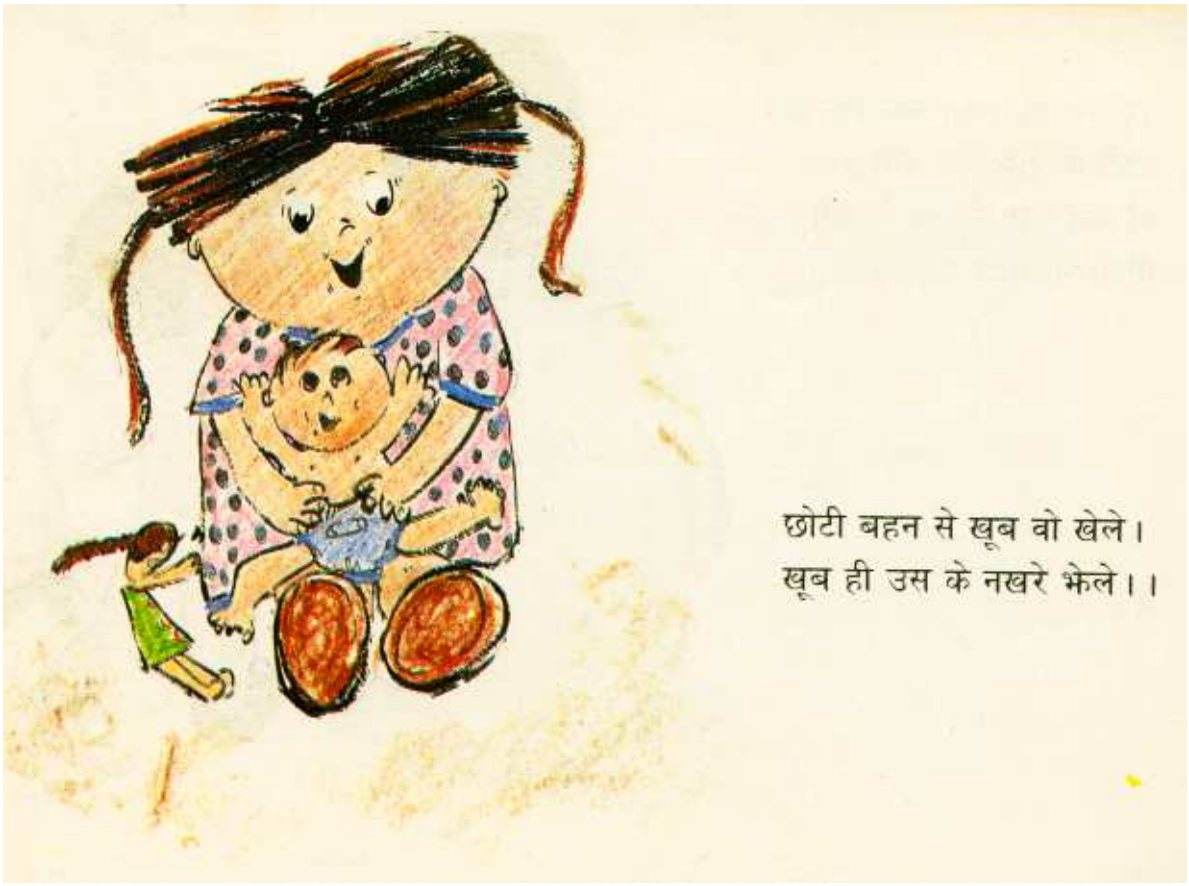

छोटी बहन से खूब वो खेले।
खूब ही उस के नखरे झेले।।

पर जब हो गुस्सा खूब चिल्लाये
छोटी के पीछे पड़ जाये।।
माँ जब उस को दूध पिलाये।
मीत्तो भी गोदी चढ़ जाये।।

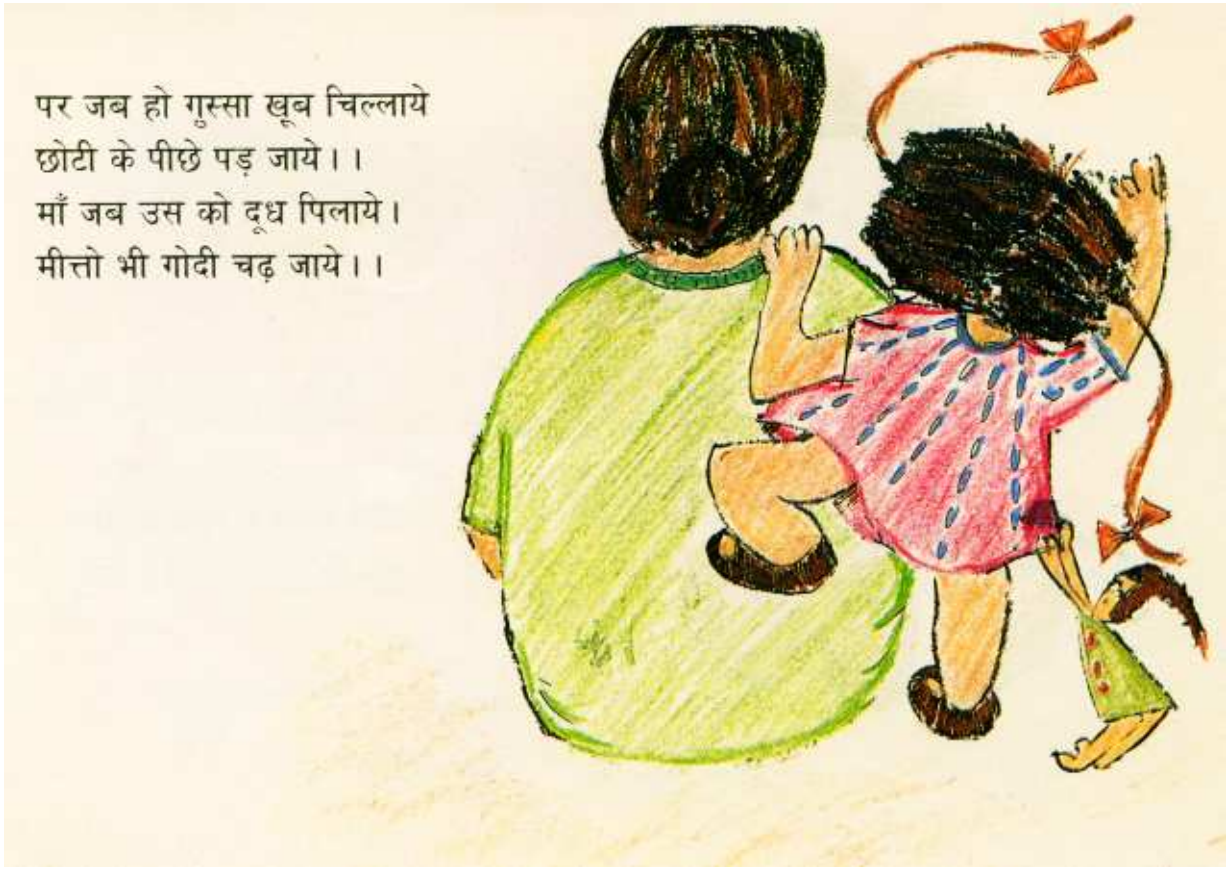

यूँ बच्चों से मज़े में खेले।
खिलौने दे दे, खिलौने ले ले।।

पर कभी चिल्लाये मेरा मेरा।
ये भी मेरा, वो भी मेरा।।

रोज़ तो रंग कागज़ पर करती।

पर कभी दीवारें रंग से भरती
देखो उस का गोरख धन्धा।
कर डाला सब गन्दा-गन्दा।।

भूखी जब हो सब कुछ खाये।
न नखरे न नाक चढ़ाये।।

पर जब खाने की मन में ना हो।
खाना यहाँ और मीत्तो वहाँ हो।।
दाल में पानी, पानी में फुलका।
सब कुछ कर दे उल्टा पुल्टा।।

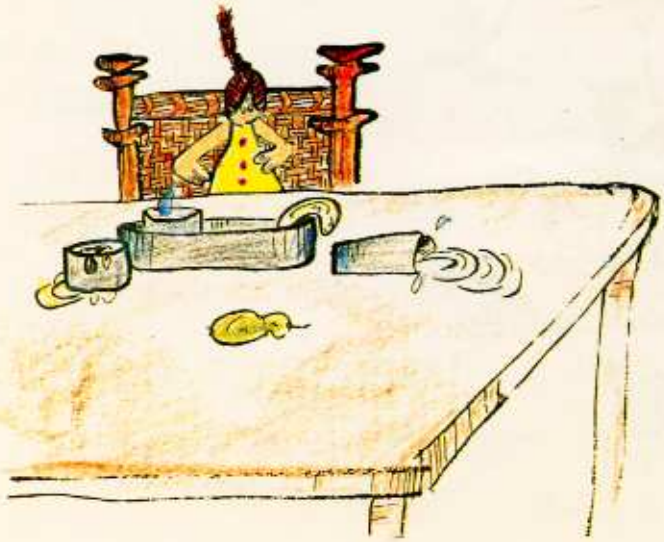

जब उस को हो नींद सताती।
थोड़ा पढ़ कर फट सो जाती।।

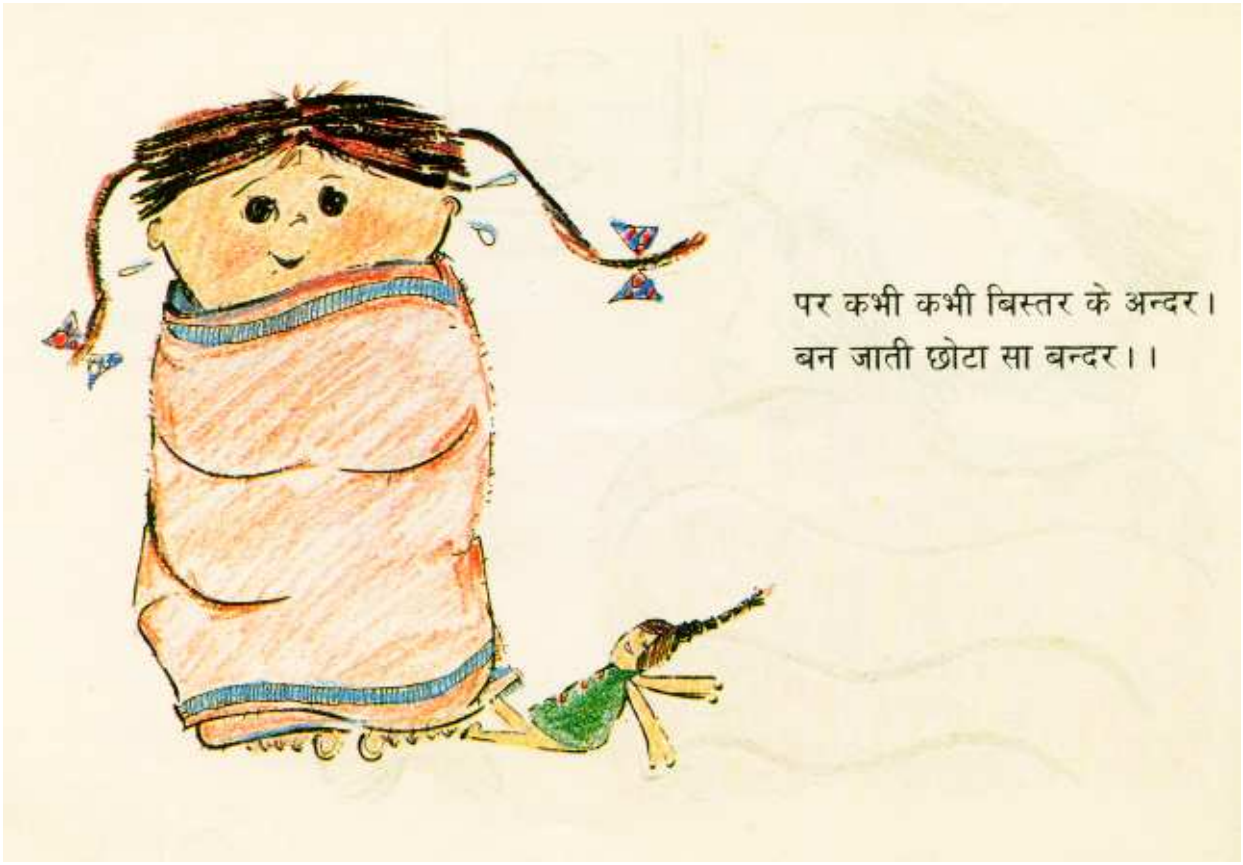

पर कभी कभी बिस्तर के अन्दर।
बन जाती छोटा सा बन्दर।।

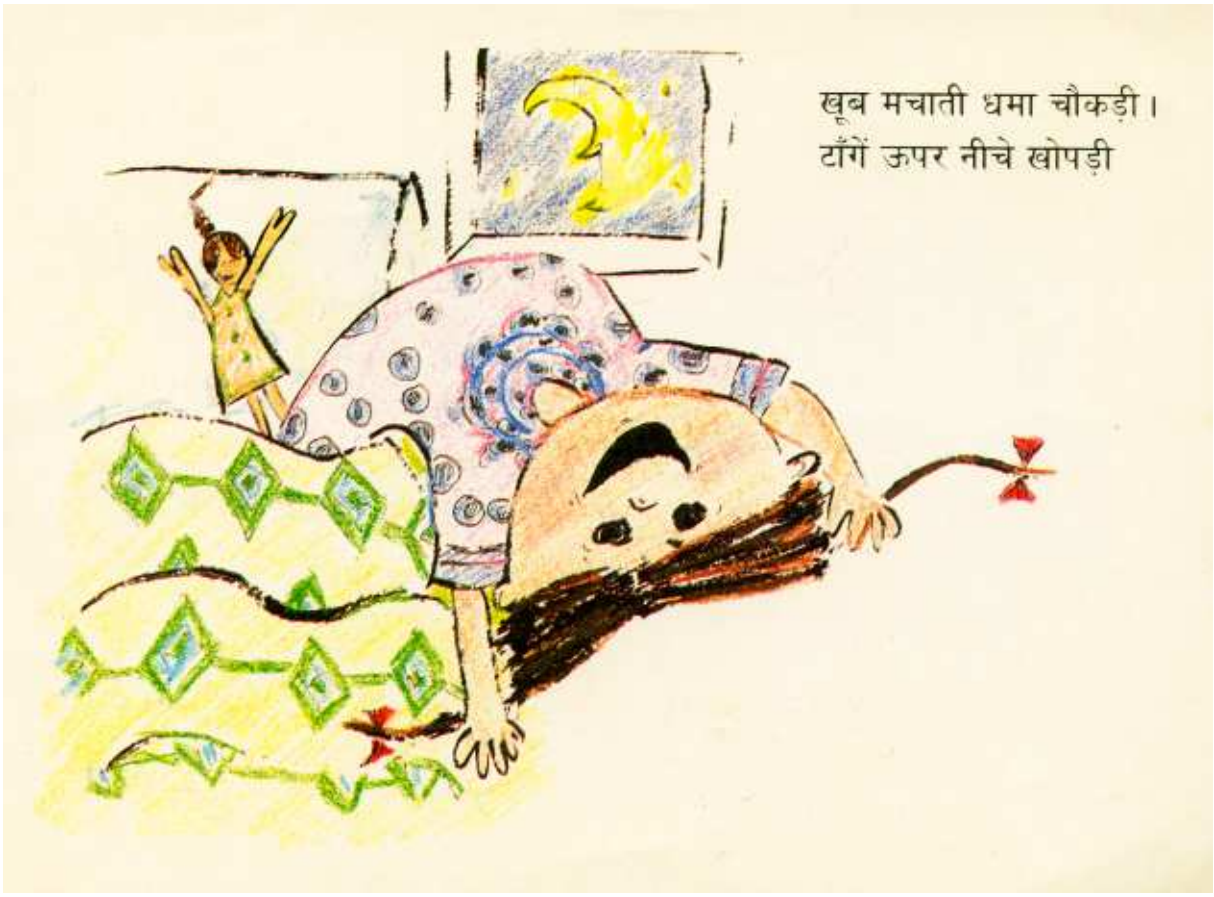
खूब मचाती धमा चौकड़ी।
टाँगें ऊपर नीचे खोपड़ी

Raj Press, New Delhi